

I.	केशवदास एवं बिहारी*	15
	● केशव - वनमार्ग में राम (37 से 51 तक) ● बिहारी - 1, 6, 10, 13, 21, 22, 24, 33, 35, 36, 38, 43, 53, 54, 61, 63, 72, 73, 75, 76	
II.	मतिराम एवं भूषण	15
	● मतिराम - 2, 6, 8, 21, 27 ● भूषण - 9, 11, 12, 14, 2	
III.	सेनापति एवं देव	15
	● सेनापति - 1, 4, 5, 7, 10 ● देव - 5, 6, 11, 15, 23	
IV.	घनानन्द एवं पद्माकर	15
	● घनानन्द - 1, 3, 6, 9, 10, 11, 19, 23 ● पद्माकर - 10, 12, 13, 14, 17	

केशवदास

(सं० १६१२-१६७४)

37-51

रामचन्द्रिका

मंगलाचरण

बालक मृनालनि ज्यों तोरि डारै सब काल,
कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख को ।
विपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम,
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुख को ।
दूरि कै कलंक-अंक भवसीस ससि सम,
राखत हैं केशोदास दास के वपुख को ।
साँकरे की साँकरनि सनमुख होत तोरै,
दशमुख मुख जोवैं गजमुख मुख को ॥१॥

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय,
ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भई ।
देवता, प्रसिद्ध सिद्ध ऋषिराज तपबृद्ध,
कहि-कहि हारे सब, कहि न केहूँ लई ।
भावी भूत वर्तमान जगत बखानत है,
केसौदास केहूँ न बखानी काहूँ पै गई ।
वर्ने पति चारिमुख पूत वर्ने पाँच मुख,
नाती वर्ने षटमुख तदपि नई-नई ॥२॥

पूरन पुरान अरु पुरुष पुरान परि—
पूरन बतावैं न बतावैं और उक्ति को ।
दरसन देत, जिन्हें दरसन समुझैं न,
नेति-नेति कहै वेद छाँड़ि आन युक्ति को ।
जानि यह केसौदास अनुदिन राम-राम,
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को ।
रूप देहि अनिमाहि, गुण देहि गरिमाहि,
भक्ति देहि महिमाहि, नाम देहि मुक्ति को ॥३॥

सीता स्वयम्बर

खंडपरशु को सोभिजै, सभा मध्य कोदंड ।
मानहुँ शेष अशेष धर, धरनहार बरिबंड ॥४॥

वनमार्ग में राम

विपिन-मारग राम विराजहीं ।
सुखद सुन्दरि सोदर भ्राजहीं ॥
विविध श्रीफल सिद्धि मनो फल्यौ ।
सकल साधन सिद्धिहि लै चल्यौ ॥३७॥

कौन हौ, कित तें चले कित जात हौ, केहि काम जू ।
कौन की दुहिता, बहू, कहि कौन की यह बाम जू ॥
एक गाउं रहौ फि साजन मित्र बन्धु बखानियै ।
देस के, परदेस के, किधौ पंथ की पहिचानियै ॥३८॥

किधौ यह राजपुत्री, वरही बरौ है किधौ,
उपधि वर्यो है यहि सोभा अभिरत हौ ।
किधौ रति रतिनाथ जस साथ केसोदास,
जात तपोवन सिव बैर सुमिरत हौ ।
किधौ मुनि सापहत, किधौ ब्रह्मदोषरत,
किधौ सिद्धिजुत, सिद्ध परम विरत हौ ।
किधौ कोऊ ठग हौ ठगौरी लीन्हें किधौ तुम,
हरि हर श्री हौ सिवा चाहत फिरत हौ ॥३९॥

मेघ मन्दाकिनी चारु सौदामिनी ।
रूप रुरे लसै देहधारी मनौ,
भूरि भागीरथी भारती हंसजा,
अंस के हैं मनौ भाग भरे भनौ ॥
देवराजा लिए देवरानी मनौ,
पुत्र संयुक्त भूलोक में सोहिए ।
पच्छ दू सन्धि संध्या सँधी हैं मनौ,
लच्छिये स्वच्छ प्रत्यक्ष ही मोहिए ॥४०॥

तड़ाग नीर-हीन ते सनीर होत केसोदास,
पुंडरीक-झुंड भौर-मंडलीन मंडहीं ।
तमाल बल्लरी समेत सूखि-सूखि कै रहें,
ते बाग फूलि-फूलि कै समूल सूल खंडहीं ॥
चितै चकोरनी चकोर, मोर मोरनी समेत,
हंस हंसिनी सुकादि, सारिका सबै पढ़ै ।
जहीं-जहीं विराम लेत रामजू तहीं-तहीं,
अनेक भौंति के अनेक भोग भाग सों बढै ॥४१॥

घाम को राम समीप महाबल ।
 सीतहिं लागत है अति सीतल ॥
 ज्यों धन-संयुत दामिनि के तन ।
 होत हैं पूषन के कर भूषन ॥४२॥
 मारग की रज तापित है अति ।
 केसव सीतहिं सीतल लागति ॥
 त्यों पद-पंकज ऊपर पाँयनि ।
 दै जु चलै तेहि ते सुखदायनि ॥४३॥

प्रति पुर औ प्रति ग्राम की, प्रति नगरन की नारि ।
 सीताजू को देखिकै, बरनत हैं सुखकारि ॥४४॥

वासों मृगअंक कहै, तोसों मृगनैनी सब,
 वह सुधाधर, तुहँ सुधाधर मानिए ।
 घह द्विजराज, तेरे द्विजराजि राजैं, वह,
 कलानिधि, तुहँ कला-कलित बखानिए ॥
 रत्नाकर के हैं दोऊ केसव प्रकासकर,
 अम्बर-विलास कुबलय हितू मानिए ।
 वाके अति सीत कर, तुहँ सीता सीतकर,
 चन्द्रमा-सी चन्द्रमुखी सब जग जानिए ॥४५॥

कलित कलंक-केतु केतु-अरि, सेत गात,
 भोग-जोग को अजोग, रोग ही को थल सौं ।
 पून्यौई को पूरन पै आन दिन ऊनो-ऊनो,
 छिन-छिन छीन होत छीलर को जल सौं ।
 चन्द्र सौ जो बरनत रामचन्द्र की दुहाई,
 सोई मति मन्द कवि केसव मुसल सौं ।
 सुन्दर सुवास अरु कोमल अमल अति,
 सीता जू को मुख सखि केवल कमल सौं ॥४६॥

एक कहैं अमल कमल मुख सीताजू कौ,
 एक कहैं चन्द-सम आनंद को कन्द री ।
 होइ जौ कमल तौ रयनि में न सकुचै री,
 चन्द्र जौ तौ बासर न होइ द्युति मंद री ॥
 बासर ही कमल रजनी ही में चंद मुख,
 बासर हू रजनि बिराजे जगबंद री ।
 देखे मुख भावै अनदेखेई कमल चन्द,
 तातें मुख मुखै सखि कमलौ न चन्द री ॥४७॥

सीतानयन चकोर सखि रविवंशी रघुनाथ ।
रामचन्द्र सिय कमल मुख, भलो बन्यो है साथ ॥४८॥

बहु बाग तड़ाग तरंगिनि तीर,
तमाल की छाँह बिलोकि भली ।
घटिका इक बैठत हैं सुख पाय,
बिछाड़ तहाँ कुस-कास थली ॥
मग कौ श्रम श्रीपति दूर करें,
सिय को सुभ बाकल अँचल सों ।
श्रम तेऊ हरै तिनको कहि केशव,
चंचल चारु दृगंचल सों ॥४९॥

श्री रघुवर के इष्ट, अश्रु-बलित सीता-नयन ।
साँची करी अदृष्ट झूठी उपमा मीन की ॥५०॥
मारग यौं रघुनाथ जू दुख सुख सब ही देत ।
चित्रकूट पर्वत गए, सोदर सिया समेत ॥५१॥

बिहारी

(सं० १६५२-१७२१)

1, 6, 10, 13, 21, 22, 24, 33, 35, 36, 38, 43, 53, 54
61, 63, 72, 73, 75, 76 सतसई

भक्ति

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झाई परै स्यामु हरित-दुति होइ ।।१।।
तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु ।
जिहिं ब्रज केलि निकुंज-मग, पग-पग होतु प्रयागु ।।२।।
चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गँभीर ।
को घटि ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर ।।३।।
सीस-मुकुट कटि-काछनी, कर-मुरली, उर-माल ।
इहिं बानक मो मन सदा, बसौ बिहारी लाल ।।४।।
या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोइ ।
ज्यों-ज्यों बूझै स्याम रंग, त्यों त्यों उज्जलु होइ ।।५।।
करौ कुबत जग कुटिलता, तजौ न दीनदयाल ।
दुखी होउगे सरल हिय, बसत त्रिभंगीलाल ।।६।।

संयोग-शृङ्गार

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबन अंग ।
दीपति देह दुहून मिलि, दिपति ताफता-रंग ।।७।।
कुटिल अलक छुटि परत मुख, बढिगौ इतौ उदोतु ।
बंक बकारी देत ज्यों, दामु रुपैया होतु ।।८।।
खौरि-पनिच भृकुटी धनुष, बधिकु समरु तजि कानि ।
हनतु तरुन-मृग तिलक-सर, सुरक-भाल भरि तानि ।।९।।
रससिंगार-मंजनु किए, कंजनु भंजनु दैन ।
अंजनु रंजनु हूँ बिना, खंजनु गंजनु नैन ।।१०।।
जोग-जुगति सिखये सबै, मनौ महामुनि मैन ।
चाहत पिय-अद्वैतता, काननु सेवत नैन ।।११।।
सायक-सम मायक नयन रंगे त्रिबिध रंग गात ।
झखौ बिलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात ।।१२।।

पत्रा ही तिथि पाइयै, वा घर के चहुँ पास ।
 नितप्रति पून्यौई रहै, आनन ओप उजास । १३॥
 भाल लाल बेंदी ललन, आखत रहे बिराजि ।
 इन्दुकला कुज में बसी मनौ राहु-भय भाजि । १४॥
 लौनें मुँह दीठि न लगै, यों कहि दीनौ ईठि ।
 दूनी है लागन लगी, दियै दिठौना दीठि । १५॥
 सहज सेत पँचतोरिया, पहिरत अति छबि होति ।
 जलचादर के दीप लौ, जगमगाति तन-जोति । १६॥
 औरै ओप कनीनिकनु, गनी धनी-सिरताज ।
 मनी धनी के नेह की, बनी छनी पट लाज । १७॥
 घाम धरीक निवारियै, कलित वलित अलि-पुंज ।
 जमुना-तीर तमाल तरु, मिलित मालती-कुंज । १८॥
 निसि अँधियारी नील पटु, पहिरि चली पिय गेह ।
 कही दुराई क्यों दुरै, दीप-शिखा सी देह । १९॥
 हरषि न बोली लखि ललनु, निरखि अमिलु संग साधु ।
 आँखिनु ही मैं हँसि धर्यौ, सीस हियै धरि हाथु । २०॥
 बतरस-लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ ।
 सौँह करै भौहनु हँसै, दैन कहै नटि जाइ । २१॥
 कहत नटत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात ।
 भरे भौन मैं करत हैं नैननु ही सब बात । २२॥
 उन हरकी हँसि कै इतै, इन सौँपी मुसकाइ ।
 नैन मिलैं मन मिलि गए, दोऊ मिलवत गाइ । २३॥
 उड़नि गुड़ी लखि ललन की, अँगना अँगना माँह ।
 बौरी लौं दौरी फिरति, छुवति छबीली छाँह । २४॥
 डिगति पानि डिगुलात गिरि, लखि सब ब्रज बेहाल ।
 कंपि किसोरी दरसि कै, खरै लजाने लाल । २५॥
 समरस-समर-संकोच-बस, बिबस न ठिक ठहराइ ।
 फिर-फिर उझकति फिर दुरति, दुरि-दुरि उझकति आइ । २६॥
 सटपटाति सैं ससिमुखी, मुख घूँघट-पटु ढाँकि ।
 पावक-झर सी झमकि कै, गई झरोखा झाँकि । २७॥

वियोग-शृङ्गार

हरि-छबि-जल जब तै परै, तब तै छिनु बिछुरै न ।
 भरत ढरत बूझत तरत, रहटघरी लौं नैन । २८॥
 प्रजर्यो आगि बियोग की, बह्यौ बिलोचन नीर ।
 आठौ जाम हियौ रहै, उड़्यौ उसास-समीर । २९॥

फिर फिर चितु उत ही रहतु, दुटी लाज की नाव ।
 अंग-अंग-छबि-झौर में, भयो भौर की नाव ।।३०।।
 पिय कैं ध्यान गही गही, रही वही ह्वै नारि ।
 आपु, आपु ही आरसी, लखि रीझति रिझवारि ।।३१।।
 बिरह-जरी लखि जीगननु, कह्यौ न उहि कै बार ।
 अरी आउ भजि भीतरै, बरसत आजु अंगार ।।३२।।
 कहा कहौं वाकी दसा, हरि प्राननु के ईस ।
 बिरह-ज्वाल जरिबो लखै, मरिबो भई असीस ।।३३।।
 वह बिनसतु नगु राखि कै, जगत बड़ौ जसु लेहु ।
 जरी विषम जुर जाइयै, आइ सुदरसन देहु ।।३४।।
 कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेसु लजात ।
 कहिहै सबु तेरौ हियौ, मेरे हिय की बात ।।३५।।
 कर लै चूमि चढ़ाइ सिर, उर लगाइ भुज भेटि ।
 लहि पाती पिय की लखत, बाँचति धरति समेटि ।।३६।।

प्रकृति

छकि रसाल-सौरभ सने, मधु माधुरी-सुगंध ।
 ठौर-ठौर झौरत झँपत, भौर-झौर मधु-अंध ।।३७।।
 बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन-तन माँह ।
 देखि दुपहरी जेठ की, छाँहों चाहति छाँह ।।३८।।
 पावस घन अँधियार महँ, रह्यौ भेदु नहिं आनु ।
 रात द्यौस जान्यौ परतु, लखि चकई चकवानु ।।३९।।
 अरुन-सरोरुह-कर-चरन, दृग-खंजन, मुख-चन्द ।
 समै आइ सुन्दरि सरद, काहि न करत अनन्द ।।४०।।
 ज्यौ ज्यौ बढ़ति विभावरी, त्यौं त्यौं बढ़त अनन्त ।
 ओक ओक सब लोक-सुख, कोक-सौक हेमन्त ।।४१।।
 लगत सुभग सीतल किरन, निसि-सुख दिन अवगाहि ।
 माह ससी-भ्रम सूर-त्यौं, रहति चकोरी चाहि ।।४२।।
 सघन कुंज छाया सुखद, सीतल सुरभि समीर ।
 मनु ह्वै जातु अजौं वहै, उहि जमुना के तीर ।।४३।।
 चुवत रवेद मकरंद कन, तरु तरु तर बिरमाइ ।
 आवस दच्छिन देस तैं, थक्यौ बटोही बाइ ।।४४।।
 धुरवा होहि न अलि उठै, धुवां धरनि चहुँ कोद ।
 जारत आवत जगत कौ, पावस प्रथम पयोद ।।४५।।

बहुज्ञता

मोर मुकट की चंद्रिकनु, यों राजत नैदनंद ।
 मनु ससिसेखर की अकस, किय सेखर सत चंद ।।४६।।
 सनि-कज्जल चख-झख-लगन, उपज्यौ सुदिन सनेहु ।
 क्यों न नृपति है भोगवै, लहि सुदेसु सबु देहु ।।४७।।
 मंगलु बिंदु सुरंग, मुख ससि, केसरि-आड़ गुरु ।
 इक नारी लहि संग, रसमय किय लोचन-जगत ।।४८।।
 मोहन मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ ।
 बसत सुचित-अंतर तरु, प्रतिबिंबित जग होइ ।।४९।।
 मैं समुझ्यौ निरधार, यह जग काँचो काँच सौं ।
 एकै रूप अपार, प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ ।।५०।।
 दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन विस्तारन-काल ।
 प्रगटत निर्गुन निकट रहि, चंग-रंग भूपाल ।।५१।।
 कौड़ा आँसू-बूँद कसि सांकर बरुनी सजल ।
 कीने बदन निमूँद, दृग-मलिंग डारे रहत ।।५२।।

अन्योक्ति

नहिं परागु, नहिं मधुर मधु नहिं विकासु इहि काल ।
 अली कली ही सौं बँध्यौ, आगें कौन हवाल ।।५३।।
 स्वारथु सुकृतु न, श्रमु बृथा, देखि बिहंग विचारि ।
 बाज पराएँ पानि परि, तूँ पच्छीनु न मारि ।।५४।।
 काल्हि दसहरा बीतिहैं, धरि मूरख, जिय लाज ।
 दुर्यौ फिरति कत द्रुमनि मैं, नीलकण्ठ बिनु काज ।।५५।।
 नहिं पावसु ऋतुराज यह, तजि तरुवर चित-भूल ।
 अपतु भए बिनु पाइहै, क्यों नवदल फल फूल ।।५६।।
 पटु पाँखै भखु काँकरै, सपर परेई संग ।
 सुखी, परेवा पुहुमि मैं, एकै तुही विहंग ।।५७।।
 इहीं आस अटक्यौ रहतु, अलि गुलाब कै मूल ।
 है हैं फेरि बसंत ऋतु, इन डारनु वे फूल ।।५८।।
 जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार ।
 अब, अलि, रही गुलाब मैं अपत, कटीली डार ।।५९।।

नीति

घर घरु डोलत दीन है, जनु जनु जाचतु जाइ ।
 दियैं लोभ चसमा चखनु, लघु पुनि बड़ौ लखाइ ।।६०।।
 आवत जात न जानियतु, तेजहिं तजि सियरानु ।
 घरहँ जँवाई लौं घट्यौ, खरौ पूस दिनभानु ।।६१।।

कनकु कनक तैं सौगुनौ, मादकता अधिकाइ ।
 उहिं खाएँ वाराइ, इहिं पाएँ ही बौराइ ।।६२।।
 संगति सुमति न पावहीं परे कुमति कै धंध ।
 राखौ मेलि कपूर मैं हींग न होइ सुगंध ।।६३।।
 नर की अरु नल-नीर की गति एकै करि जोइ ।
 जेतौ नीचौ है चलै, तेतौ ऊँचौ होइ ।।६४।।
 दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यों न बढै दुख-दंदु ।
 अधिक अँधेरौ जग करत, मिलि मावस रवि-चंदु ।।६५।।
 कहै यहै श्रुति सुम्रत्तौ, यहै सयाने लोग ।
 तीन दबावत निसकही पातक, राजा, रोग ।।६६।।
 को कहि सकै बड़नु सौं लखै बड़ीयौ भूल ।
 दीने दई गुलाब की इन डारनु वे फूल ।।६७।।
 मीत, न नीति गलीतु है जौ धरियै धनु जोरि ।
 खाएँ खरचैं जौ जुरै, तौ जोरियै करोरि ।।६८।।

प्रेम

गिरि तै ऊँचे रसिक-मन, बूड़े जहाँ हजारु ।
 वहैं सदा पसुनरन कौं, प्रेम-पयोधि पगारु ।।६९।।
 जद्यपि सुन्दर सुघर पुनि, सगुनौ दीपक-देह ।
 तऊ प्रकास करै तितौ, भरिये जितौं सनेह ।।७०।।
 क्यों बसियै क्यों निबहियै, नीति नेह पुर मौंहि ।
 लगालगी लोइन करै, नाहक मन बैधि जाँहि ।।७१।।
 दृग, उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति ।
 परति गाँठि दुरजन हियै, दई नई यह रीति ।।७२।।

Scattered

प्रकीर्ण

तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति रंग ।
 अनबूडै बूडे तिरे, जे बूडे सब अंग ।।७३।।
 इक भीजै चहलैं परैं, बूडै बहैं हजार ।
 कितै न औगुन जग करैं, बै-नै चढ़ती बार ।।७४।।
 लिखनि बैठि जाकि सबी, गहि गहि गरब गरूर ।
 भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ।।७५।।
 चटक न छाँड़तु घटत हूँ, सज्जन-नेह गँभीर ।
 फीकौ परै न, बरु फटै, रँग्यौ चोल रंग चीर ।।७६।।
 जौ न जुगति पिय मिलन की, धूरि मुकुति-मुँह दीन ।
 जौ लहियै सँग सजन तौ, धरक नरक हूँ कीन ।।७७।।

मतिराम

(सं० १६६०-१७५०)

२, ६, ८, २७, २१

मोर पखा 'मतिराम' किरीट मैं, कंठ बनी बनमाल सुहाई;
मोहन की मुसकानि मनोहर, कुंडल-डोलनि मैं छवि छाई |
लोचन लोल बिसाल बिलोकनि, को न बिलोकि भयो बस माई;
वा मुख की मधुराई कहा कहाँ, मीठी लगै अंखियान लुनाई | ११ |

बैठी तिया गुरुलोगन मैं, रति तैं अति सुंदर रूप विसेखी |
आयो तहाँ 'मतिराम' सुजान, मनोभव सौं बढि कान्ति उरेखी |
लोचन रूप पियो ही चहैं अरु, लाजनि जात नहीं छबि पेखी |
नैन नमाय रही हिय-माल मैं, लाल की मूरति लाल में देखी | १२ |

पाँयन आनि परे तो परे रहे, केती करी मनुहारि न झेली |
मान्यो मनायो न मैं 'मतिराम' गुमान में ऐसी भई अलबेली |
प्यारो गयो दुख मानि कहौ अब कैसे रहौं इहि राति अकेली |
आपुते ल्याउ मनाय कन्हाईकों, मेरो न लीजियो नाम सहेली | १३ |

रावरे नेह कौं लाज तजी तरु गेह के काज सबै बिसराए;
डारि दियो गुरु लोगनि को डर, गाँव चबाय मैं नाव धराए |
हेत कियो हम जो तो कहा तुम तो 'मतिराम' सबै बहराए;
कोऊ कितेक उपाय करौ कहूँ होत हैं आपने, पीउ पराए | १४ |

साथ सखी के नई दुलही को भयो हरि कौ हियो हेरि हिमंचल |
आय गए 'मतिराम' तहाँ घरु जानि इकंत अनंद ते चंचल |
देखत ही नंदलाल को बाल के पूरि रहे अँसुवानि दृगंचल |
बात कही न गई सु रही गहि हाथ दुहूँ सौं सहेली को अंचल | १५ |

कुंदन कौ रँगु फीको लगै, झलकै अति अंगन चारु गुराई;
आँखिन में अलसानि, चितौनि में मंजु बिलासन की सरसाई |
को बिन मोल बिकात नहीं, 'मतिराम' लहै मुसकानि मिठाई;
ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि, त्यों-त्यों खरी निकरै-सी, निकाई | १६ |

ध्यावैं सुरासुर सिद्ध समाज, महेसहु आदि महामुनि ग्यानी;
जोग मैं, जन्त्र मैं, मन्त्र मैं, तंत्र मैं, गावै सदा खुति, सेष भवानी |
संकट-भाजन आनन की दुति पूरन दण्ड उदण्ड सो जानी;
ध्यान सदा पद पंकज को, 'मतिराम' तषै रसराज बखानी | १७ |

प्राण पियारो मिल्यो सपने मैं, परी जब नैसुक नीद निहोरैं |
कंत को आगम त्यों ही जगाय, कह्यो सखि बोल पियूष निचोरैं |

१ यों मतिराम बढ्यो हिय मैं सुख बाल के बालम सौं दृग जोरैं ।
 जैसे मिहीं पट मैं चटकीलो चढ़ै रंग तीसरी बार के बोरैं । ॥८॥
 जा दिन तैं छवि सौं मुसक्यात कहूँ निरखे नँदलाल विलासी ।
 ता दिन तैं मन ही मन मैं 'मतिराम' पियै मुसक्यानि सुधासी ।
 नेकु निमेष न लागत नैन, चकी चितवै तिय देव-तिया सी ।
 चंद्रमुखी न हलै न चलै निरवात निवास मैं दीपसिखा सी । ॥९॥
 कोऊ नहीं बरजै मतिराम रहो तितही जितही मन भायो ।
 काहे कौं सौहैं हजार करौ, तुम तौ कबहूँ अपराध न ठायो ।
 सोवन दीजै, न दीजै हमें दुख, यों ही कहा रसवाद बढ़ायौ ।
 मान रहोई नहीं मन मोहन मानिनी होय सो मानै मनायो । ॥१०॥
 क्यों इन आँखिन सों निरसंक है मोहन को तन-पानिप पीजै ।
 नेकु निहारैं कलंक लगै इहि गाँव बसे कहौ कैसे के जीजै ।
 होत रहै मन यों मतिराम, कहूँ वन जाय बड़ो तप कीजै ।
 है बनमाल हिए लगिए अरु है मुरली अधरा रस लीजै । ॥११॥
 दोऊ अनन्द सौं आँगन मॉझ विराजै असाढ़ की साँझ सुहाई ।
 प्यारी कौं बूझत और तिया को अचानक नाउँ लियो रसिकाई ।
 आई उनै मुंह मैं हँसी, कोपि प्रिया सुरचाप सी भौंह चढ़ाई ।
 आँखिन तैं गिरे आँसू के बूँद सुहोँसु गयो उडि हंस की नाई । ॥१२॥
 गोपसुता कहै गौरि गुसाईनि ! पायँ परौं बिनती सुनि लीजै ।
 दीन दयानिधि दासी के ऊपर नैक सुचित दया-रस भीजै ।
 देहि जो ब्याहि उछाहसो मोहनै, मात-पिताहू को सो मन कीजै ।
 सुन्दर साँवरो नंदकुमार, बसै उर जो वह सो बर दीजै । ॥१३॥

जा दिन तै चलिवे की चरचा चलाई तुम,
 ता दिन तैं वाके पियराई तन छाई है ।
 कहै 'मतिराम' छोड़े भूषन बसन, पान,
 सखिन सौं खेलनि, हँसनि बिसराई है ।
 आई ऋतु सुरभि, सुहाई प्रीति वाके चित्त,
 ऐसे मैं चलौ तो लाल रावरी बड़ाई है ।
 सोवत न रैन दिन, रोवत रहति बाल,
 बूझे तैं कहति मायके की सुधि आई है । ॥१४॥

अंगन मैं चंदन चढ़ाय घनसार सेत,
 सारी छीर फेन की सी आभा उफनाति है ।
 राजत रुचिर रुचि मोतिन के आभरन,
 कुसुम कलित केस सोभा सरसाति है ।

बरज्यो न मानत हौ बार-बार बरज्यो मैं,
 कौन काम मेरे इत भौन मैं न आइये ।
 लाज को न लेस जगहौंसी को न डर मन,
 हँसत-हँसत आन बात न बनाइये ।
 कवि मताराम नित उठि कलकानि करौ,
 नित झूठी सौहैं करो नित बिसराइये ।
 ताके पग लागो निस जागि जाके उर लागे,
 मेरे पग लागि उर आगि न लगाइये ॥२०॥

मोहन-लला को मनमोहनी बिलोकि बाल,
 कस करि राखति है उमगे उमाह को;
 सखिनि की दीटि कौं बचायकै निहारति है,
 आनँदप्रबाह बीच पावत न थाह को ।
 कवि 'मताराम' और सब ही के देखत ही,
 ऐसी भाँति देखति छिपावति उछाह कौं;
 वेई नैन रूखे-से लगत और लोगनि कौं,
 वेई नैन लागत सनेह-भरे नाह कौं ॥२१॥

जाके कोस भीतर भुवन करतार ऐसो,
 जाके नाभिकुंड मैं कमल विकसत है;
 कहैं 'मताराम' सब थावर जंगम जग,
 जाकी दिग्घ उदर-दरी मैं दरसत है ।
 जाके एक-एक रोमकूपनि मैं कोटिन,
 अनंत ब्रह्मांडनि को वृंद बिलसत है;
 राव भावसिंह तेरी कहाँ लौं बड़ाई करौं,
 ऐसो बड़ो प्रभु तेरे मन मैं बसत है ॥२२॥

निसि दिन स्रौननि पीयूष सो पियत रहै,
 छाये रह्यो नाद बाँसुरी के सुरग्राम को ।
 तरनि-तनूजा-तीर वन कुंज बीथिन में,
 जहाँ-तहाँ देखति हैं रूप छवि धाम को ।
 कवि 'मताराम' होत हौतो न हिये तैं नैक,
 सुख प्रेम गात को परस अभिराम को ।
 ऊधौ तुम कहत बियोग तजि योग करौ,
 योग तब करैं जो बियोग होय स्याम को ॥२३॥

साँझ ही सिंगार साजि संगलै सहेलिन कौं,
 सुंदरि मिलन चली आनँद के कंद कौं ।
 कवि 'मताराम' मग करति मनोरथनि,
 पेख्यो परंजक पै न प्यारे नँदनंद कौं ।

नेह ते लगी है देह दाहन दहत गोह,
 बाग को विलोकि द्रुम बेलिन के वृन्द को ।
 चंद को हँसत तब आयो मुखचंद अब,
 चंद लाग्यो हँसन तिया के मुखचंद को । ॥२४॥
 सकल सहेलिन के पीछ-पीछे डोलति है,
 मंद मंद गौनु आजु हिय को हरत है ।
 संमुख होत, 'मतिराम' सुख होत, जबै,
 पौन लागे घूँघट को पट उघरत है ।
 कालिंदी के तट बंसी बट के निकट,
 नंदलाल कौ सँकोचन तैं चाह्यो न परत है ।
 तनु तो तिया को बर भाँवरै भरत,
 मनु, सामरे बदन पर भाँवरै भरत है । ॥२५॥
 बानी को बसन कैधौं बात के विलास डोलै,
 कैधौं मुखचंद चारु चंद्रिका प्रकास है ।
 कवि 'मतिराम' कैधौं काम को सुजस कै,
 पराग-पुंज प्रफुलित सुमन सुबास है ।
 नाक नथुनी के गजमोतिन की आभा कैधौं,
 देहवंत प्रगटित हिए को हुलास है ।
 सीरे करिबे को पियनैन घनसार कैधौं,
 बाल के बदन बिलसत मृदु हास है । ॥२६॥
 सुंदरि सरस सब अंगन सिंगार साजे,
 सहज सुभाव निसि नेह कछु कै गई ।
 कीने 'मतिराम' बिहसौहैं से कपोल गोल,
 बोलन अमोल इतनोई दुख दै गई ।
 मेरे ललचौहैं मुख फेरिकै लजौहैं, लल-
 चौहैं चारु चखनि चितै कै सो चली गई ।
 निपट निकट ह्वै कै कपट छुवाय अंग,
 लाय की सी लपटि लपेटि मनु लै गई । ॥२७॥
 नैन जोरि मुख मोरि हँसि नैसुक नेह जनाइ ।
 आगि लैन आई, हिये मेरे गई लगाइ । ॥२८॥
 पिय-आगम सुनि बाल तन बाढ़े हरख विलास ।
 प्रथम बूँद वारिद उठैं ज्यो वसुमती सुवास । ॥२९॥
 दिपै देह दीपति गयौ दीप बयारि बुझाइ ।
 अंचल ओट किए तरु चली नवेली जाइ । ॥३०॥
 भौंह बीच तिल तनक सै सोहत सुखमा संचि ।
 दियो डिठौना शीझि सों मानहुँ विरचि विरचि । ॥३१॥

भूषण

(सं० १६७०-१७७२)

2, 9, 11, 12, 14

वन्दना

बिकट अपार भव-पंथ के चले को श्रम-
हरन करन बिजना-से ब्रह्म ध्याइए ।
यह लोक परलोक सुफल करन कोक-
नद से चरन हिए आनि कै जुड़ाइए ॥
अलिकुल-कलित-कपोल, ध्यान ललित,
अनंदरूप-सरित में भूषण अन्हाइए ।
पाप-तरु-भंजन बिघन-गढ़-गंजन
जगत-मन-रंजन द्विरदमुख गाइए ॥१॥
जै जयंति जै आदि सकति जै कालि कपर्दिनि ।
जै मधुकैटभ-छलनि देवि जै महिष-विमर्दिनि ॥
जै चमुंड जै चंड-मुंड-भंडासुर-खंडिनि ।
जै सुरक्त जै रक्तबीज बिड्डाल-बिहंडिनि ।
जै जै निसुंभ सुंभदलनि, भनि भूषण जै जै भननि ।
सरजा समथ्थ शिवराज कहँ, देहि-बिजै जै जग जननि ॥३॥

रायगढ़-वर्णन

जा पर साहि तनै शिवराज सुरेस कि ऐसी सभा सुभ साजै ।
यों कवि भूषण जंपत हैं लखि संपति को अलकापति लाजै ॥
जा मधि तीनिहु लोक कि दीपति ऐसो बड़ो गढ़राज बिराजै ।
वारि पताल सी माची मही अमरावति की छवि ऊपर छाजै ॥३॥
मनिमय महल शिवराज के इमि रायगढ़ में राजहीं ।
लखि जच्छ किन्नर असुर सुर गंधर्व हौंसनि साजहीं ॥
उत्तंग मरकत मन्दिरन मधि बहु मृदंग जु बाजहीं ।
घन-समै मानहुं घुमरि करि घन घनपटल गल गाजहीं ॥४॥
मुकतानि की झालरिन मिलि मनि-माल छाजा छाजहीं ।
संध्या समय मानहुं नखत गन लाल अम्बर राजहीं ॥

जहाँ तहाँ ऊरध उठे हीरा किरन घन समुदाय हैं ।
 मानो गगन-तम्बू तन्यो ताके सपेत तनाय हैं ।।५।।
 भूषण भनत जहाँ परसि कै मनि पुहुपरागन की प्रभा ।
 प्रभु पीत पट को प्रकट पावत सिन्धु मेघन की सभा ।।
 मुख नागरिन के राजहीं कहूँ फटिक महलन संग मैं ।
 विकसंत कोमल कमल मानहु अमल गंग तरंग मैं ।।६।।
 कितहूँ बिसाल प्रबाल जालन जटित अंगनि भूमि है ।
 जहाँ ललित बागनि द्रुम लतनि मिलि रहै झिलमिलि झूमि है ।।
 चंपा चमेली चारु चन्दन चारिहूँ दिसि देखिए ।
 लवली लवंग यलानि केरे लाखहों लागि लेखिए ।।७।।
 पुत्राग कहूँ कहूँ नागकेसरि कतहूँ बकुल असोक हैं ।
 कहूँ ललित अगर गुलाब पाटल-पटल बेला थोक हैं ।।
 कितहूँ नेवारी माधवी सिंगारहार कहूँ लसैं ।
 जहाँ भाँति भाँतिन रंग रंग बिहंग आनँद सों रसैं ।।८।।

शिवाजी प्रशस्ति

साजि चतुरंग बीर रंग में तुरंग चढ़ि,
 सरजा शिवाजी जंग जीतन चलत हैं ।
 'भूषण' भनत नाद बिहद नगारन के
 नदी-नद मद गब्बरन के रलत हैं ।।
 ऐल-फैल खेल-भैल खलक मैं गैल-गैल,
 गजन की टेल-पेल सैल उलसत हैं ।
 तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि,
 थारा पर पारा पारावार यों हलत हैं ।।९।।
 प्रतिनी पिसाचऽरु निसाचर निसाचरिहूँ
 मिलि मिलि आपुस में गावत बधाई है ।
 भैरो भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
 जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमात जुरि आई है ।।
 किलकि-किलकि कै कुतूहल करति काली,
 डिम-डिम डमरू दिगम्बर बजाई है ।
 सिवा पूछैं सिव सों समाज आजु कहाँ चलो,
 काहूँ पै सिवा नरेश भूकुटी चढ़ाई है ।।१०।।
 ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
 ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं ।

कंदमूल भोग करैं कंदमूल भोग करैं,
 तीन बेर खाती ते वै तीन बेर खाती हैं ।।
 भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग,
 बिजन डुलाती ते वै बिजन डुलाती हैं ।
 'भूषन' भनत शिवराज बीर तेरे त्रास,
 नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं ।।११।।

उतरि पलंग ते न दियो है धरा पै पग,
 तेऊ सगबग निसि दिन चली जाती हैं ।
 अति अकुलातीं मुरझातीं न छिपातीं गात,
 बात न सुहातीं बोले अति अनखाती हैं ।।
 'भूषन' भनत सिंह साहि के सपूत सिवा,
 तेरी धाक सुनि अरिनारी बिललाती हैं ।
 कोऊ करें घाती कोऊ रोतीं पीटि छाती घरैं,
 तीन बेर खाती तेऽब तीन बेर खाती हैं ।।१२।।

सोंधे को अधार किसमिस जिन को अहार,
 चारि को सो अंक लंक चन्द सरमाती हैं ।
 ऐसी अरिनारी सिवराज बीर तेरे त्रास,
 पायन में छाले परै, कन्दमूल खाती हैं ।
 ग्रीष्म की तपनि ऐती तपती न सुनी कान,
 कंज कैसी कली बिनु पानी मुरझाती हैं ।
 तोरि तोरि आछे पिछोरा सो निचोरि मुख,
 कहैं “अब कहाँ पानी मुकतों में पाती हैं” ।।१३।।

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
 ताहि खरो कियो छ हजारिन के नियरे ।
 जानि गैर मिसिल गुसीले गुसा धारि उर,
 कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे ।
 'भूषन' भनत महावीर बलकन लाग्यो,
 सारी पातसाही के उड़ाये गये जियरे ।
 तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
 स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे ।।१४।।

राना भो चमेली और बेला सब राजा भये,
 ठौर ठौर रस लेत निज यह काज है ।
 सिगरे अमीर आनि कुन्द होत घर घर,
 भ्रमत भ्रमर जैसे फूल को समाज है ।।

सेनापति

(सं० १७०० के लगभग)

1, 4, 5, 7, 10

कवित्त रत्नाकर

श्लेष-वर्णन

राखति न दोषै पोषै पिंगल के लच्छन कौ
बुध कवि के जो उपकंठ ही बसति है ।
जोए पद मन कौ हरष उपजावति है
तजै को कनरसै जो छन्द सरसति है ॥
अच्छर हैं विशद करति उषै आप सम
जातैं जगत की जड़ताऊ बिनसति है ।
मानौ छवि ताकी उदवत सबिता की 'सेना-
पति' कवि ताकी कबिताई बिलसति है ॥१॥
तुकन सहित भले फल कौ धरत सूधे
दूर कौ चलत जे हैं धीर जिय ज्यारी के ।
लागत बिबिध पच्छ सोहत हैं गुन संग
रवन मिलत मूल कीरति उज्यारी के ॥
सोई सीस धुनैं जाके उर मैं चुभत नीके
बेग बिधि जात मन मोहैं नर नारी के ।
'सेनापति' कवि के कवित्त बिलसत अति
मेरे जान बान हैं अचूक चापधारी के ॥२॥
व्यापी देस देस विस्व कीरति उज्यारी जाकी
सीतै संग लीने जामैं केवल सुधाई है ।
सुर-नर-मुनि जाके दरस कौ तरसत
राखत न खर तेजै कला की निकाई है ॥
करन के जोर जीति लेत हैं निसा कलंकै
सेवक है तारे ताकी गनती न पाई है ।
राजा रामचंद अरु पून्यौ कौ उदित चंद
'सेनापति' बरनी दुहू की समताई ॥३॥
सारंग धुनि सुनावै घन रस बरसावै
मोर मन हरषावै अति अभिराम है ।

जीवन आधार बड़ी गरज करनहार
 तपति हरनहार देत मन काम है ।
 सीतल सुभग जाकी छाया जग 'सेनापति'
 पावत अधिक तन मन बिसराम है ॥
 संपै संग लीने सनमुख तेरे बरसाऊ
 आयौ घनस्याम सखि मानौं घनस्याम है ॥४॥
 सदा नंदी जाकौं आसा कर है विराजमान
 नीकौ घनसार हूँ तैं बरन है तन कौं ।
 सैन सुख राखै सुधा दुति जाके सेखर है
 जाके गौरी की रति जो मथन मदन कौं ॥
 जो है सब भूतन कौं अन्तर निवासी रमैं
 धरै उर भोगी भेष धरत नगन कौं ।
 जानि बिन कहैं जानि 'सेनापति' कहैं मानि
 बहुधा उमाधव कौं भेद छाँड़ि मन कौं ॥५॥

ऋतु-सौन्दर्य

लाल लाल केसू फूलि रहे हैं विलास संग
 स्याम रंग मेटि मानो मसि में मिलाये हैं ।
 तहाँ मधु काज आइ बैठे मधुकर पुंज
 मलय पवन उपवन बन धाये हैं ॥
 'सेनापति' माधव महीना में पलास तरु
 देखि देखि भाव कविता के मन आये हैं ।
 आधे अंग सुलगी सुलगी रहे आधे मानो
 विरही दहन काम क्वैला परचाये हैं ॥६॥
 वृष कौं तरनि तेज सहसो किरन करि
 ज्वालन के जाल विकराल बरसत है ।
 तचति धरनि, जग जरत झरनि, सीरी
 छाँह कौं पकरि पंथी-पंछी बिरमत है ॥
 'सेनापति' नैंक दुपहरी के ढरत, होत
 धमका विषम, ज्यों न पात खरकत है ।
 मेरे जान पौनों सीरी ठौर कौं पकरि कौनों
 घरी एक बैठि कहूँ घामै बितवत है ॥७॥
 दामिनी दमक सुरचाप की चमक स्याम
 घटा की घमक अति घोर घन घोरतैं ।

कोकिला, कलापी, कल कूँजत है जित तित
 सीकरतें सीतल समीर की झकोरतें ।।
 'सेनापति' आवन कह्यो है मनभावन सु
 लाग्यो तरसावन बिरह जुर जोरतें ।
 आयो सखि सावन मदन सरसावन सु
 लाग्यो बरसावन सलिल चहूँ ओरतें ।।८।।
 कातिक की राति थोरी थोरी सियराति
 'सेनापति' को सुहाति सुखी जीवन के गन हैं ।
 फूले हैं कुमुद फूली मालती सघन बन
 फूलि रहे तारे मानो मोती अनगन हैं ।।
 उदित विमल चंद चाँदनी छिटकि रही
 राम कैसो जस अध ऊरध गगन है ।
 तिमिर हरन भयो सेत है बरन सब
 मानहुँ जगत छीर-सागर मगन है ।।९।।

सीत कौं प्रबल सेनापति कोपि चढ़्यो दल,
 निबल अनल, गयो सूर सियराइ के ।
 हिम के समीर, तेई बरसैं विषम तीर,
 रही है गरम भौन कोनन में जाइ के ।।
 धूम नैन बहैं, लोग आगि पर गिरे रहैं,
 हिए सौं लगाइ रहैं नैक सुलगाइ के ।
 मानौ भीत जानि, महा सीत तैं पसारि पानि,
 छतियाँ की छाँह राख्यो पाउक छिपाइ के ।।१०।।
 सिसिर तुषार के बुखार से उखारत है,
 पूस बीते होत सून हाथ-पाइ ठिरि के ।
 द्यौस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाइ,
 'सेनापति' पाई कछू सोचि के सुमिरि के ।।
 सीत तैं सहस-कर सहस-चरन ह्वै के,
 ऐसे जात भागि तम आवत है घिरि के ।
 जौ लौं कोक कोकी कौं मिलत तौं लौं होति राति,
 कोक अधबीच ही तैं आवत है फिरि के ।।११।।

राम-रसायन

सुरुतरु सार की, सवाँरी है विरंचि पचि,
 कंचन खचित चिंतामनि के जराइ की ।

देव

(सं० १७३०-१८२४ के लगभग)

5, 6, 11, 15, 23

मंगलाचरण

आदि ब्रह्म विद्या वेद कहत प्रकृति जासो जोगमाया जानियोई
योगिनी समाधी है ।
भारती भवानी भुवनेश्वरी मतंगी मात काली अन्नपूर्णा
कपाली अंग आधी है ।
एक ते अनेक जानी जल थल में समानी अगनित बानी
सिद्ध साधकनि साधी है ।
साधारन देवी जो असाधारन रूप सोई बाधा हरिबे को 'देव'
राधा अवराधी है ॥१॥

ऋतुवर्णन

पावस प्रथम पिय ऐबे की अवधि सो जो
आवत ही आवैं तो बुलाऊँ अति आदरनि ।
नाहीं तौन हील होन दे री ! झील झाबरनि,
ग्रीखमहि राखु खाली भाखु खल खादरनि ।
बीजुरी बरजु, कहु मेघ न गरजु, इन
गाज-मारे मोर-मुख मोरि री ! निरादरनि ।
कंठ रोकि कोकिलनि, चोंच नोचि चातकनि,
दूरि करि दादुर, बिदा करि री ! बादरनि ॥२॥

जागी न जुन्हाई, ज्वाल लागी है मनोभव की
लोक तीनों, हियो हेरि-हेरि हहरत है ।
बारि पर परे जलजात जात जरि-बरि
बारिधि ते बाड़व-अनल पसरत है ।
धरनि ते लाइ झरि छूटी नभ जाइ, कहै
'देव' जाहि जोवत जगत हू जरत है ।
तारे अनगारे-ऐसे चमकत चहुँ ओर,
बैरी बिधु-मंडल भभूको-सो बरत है ॥३॥

हों हीं हों और, कि ये सब और, कि
 डोलतु आजु कौ औरै समीरौ ।
 या तैं इन्हें तन-ताप सिरातु, पै
 मेरे हिये न थिरातु है धीरौ ।
 ये कहैं कोकिल कूक-भली, मोहि
 कान सुने जम आवतु नीरौ ।
 लोग ससी को सराहत री ! सब,
 तोहू लगै सखि ! साँचेहू सीरौ ? ॥४॥

झहरि-झहरि झीनी बूँद हैं परति मानौ,
 घहरि-घहरि घटा घेरी है गगन में ।
 आनि कह्यो स्याम मोसों, चलौ झूलिबे को आजु,
 फूली न समानी, भयी ऐसी हों मगन में ।
 चाहति उद्योई उठि गयी सो निगोड़ी नींद,
 सोय गये भाग मेरे जागि वा जगन में ।
 आँखि खोलि देखौं तौ न, घन हैं न घनस्याम,
 वेई छापी बूँदें मेरे आँसू है दृगन में ॥५॥

सुनिकै धुनि चातक-मोरनि की,
 चहुँ ओरनि कोकिल-कूकनि सों ।
 अनुराग-भरे हरि बागनि में
 सखि ! रागत राग अचूकनि सों ।
 कवि 'देव' घटा जु नयी उनयी,
 बन भूमि भई दल दूकनि सों ।
 रंगराती हरी हहराती लता,
 झुकि जाती समीर के झूँकनि सों ॥६॥

सहर-सहर सोंधो सीतल समीर डोलै,
 घहर-घहर घन घेरि कै घहरिया ।
 झहर-झहर झुकि झीनी झर लायो 'देव',
 छहर-छहर छोटी बूँदन छहरिया ।
 हहर-हहर हँसि-हँसि के हिंडोरे चढ़ी,
 थहर-थहर तनु कोमल थहरिया ।
 फहर-फहर होत पीतम को पीत पट,
 लहर-लहर होतिप्यारी की लहरिया ॥७॥

नाचत मोर नचावत चातिक,
 गावत दादुर आरभटी में ।
 कोकिल की किलकार सुने
 बिरही बपुरे बिस घूँटें घटी में ।

अम्बर नील घनी घनमाल, सु
 भूमि बनी बनमाल तटी में ।
 साँवर पीत मिले झलकें
 घन दामिनी से घनस्याम पटी में ॥८॥
 कोयल अलापी, कुल नाचत कलापी, ताल
 बोलत बिसाल बोल चातक सुनायो है ।
 दामिनीन बीच उपबीत गुन पीतपट,
 मोतिन को हार बग-पाँति मन-भायो है ।
 फूले मुख लोयन कमल कमलाकर,
 मुकुट रवि जोति, ताप बरखि सिरायो है ।
 मोहै धुनि सरगमै बरखा पहर चौथे,
 मेघ तन स्याम घनस्याम बनि आयो है ॥९॥
 डार द्रुम पालन, बिछौना नव पल्लव के,
 सुमन झिगूला सोहै, तन छबि भारी दै ।
 पवन झुलावै केकी-कीर बतरावै 'देव',
 कोकिल हलावै-हुलसावै कर तारी दै ।
 पूरित पराग सों उतारो करै राई-नोन,
 कंजकली नायिका, लतान सिर सारी दै ।
 मदन महीप जू को बालक बसंत, ताहि
 प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै ॥१०॥

रूप-तरंग

आई बरसाने ते बुलाई वृषभानु सुता,
 निरखि प्रभात प्रभा भानु की अथै गई ।
 चक चकवान को चुकाए चख-चोटन सों,
 चकित चकोर चक-चौंधी सों चकै गई ।
 नंद जू के नंद जू के नैनन अनंदमयी,
 नंद जू के मंदिरन चंदमयी छै गई ।
 कंजन कलिनमयी, कुंजन अलिनमयी
 गोकुल की गलिन नलिनमयी कै गई ॥११॥
 आई हुती अन्हवावन नायनि सांधो लिए कर सूधे सुभायनि ।
 कंचुकी छोरी उतै उबटैवे को ईगुर से अँग की सुखदायनि ॥
 'देव' सरूप की रासि निहारति पायँ ते सीस लौं सीस ते पायनि ।
 है, रही ठौर ही ठाढ़ी ठगी-सी, हँसै कर ठोढ़ी धरे ठकुरायनि ॥१२॥
 जगमगी जोतिन जड़ाऊ मनि-मोतिन की,
 चंद-मुख-मंडल पै मंडित किनारी-सी ।

बेंदी बर वीरन गहीर नग हीरन की,
 देव झमकनि में झमक भीर भारी-सी ।
 अंग-अंग उमड़्यो परत रूप-रंग नव-
 जोवन अनूपम उज्यास न उज्यारी-सी ।
 डगर-डगर बगरावति अगर अंग,
 जगर मगर आपु आवति दिवारी-सी ॥१३॥

फटिक सिलानि सों सुधार्यो सुधा-मंदिर,
 उदधि दधि को सो अधिकाई उमगै अमंद ।
 बाहेर ते भीतर लौं भीति न दिखैये 'देव'
 दूध को-सो फेनु फैलो आँगन फरसबंद ।
 तारा सी तरुनि तामैं ठाढ़ी झिलमिल होति,
 मोतिन की जोति मिली मल्लिका को मकरंद ।
 आरसी-से अंबर मैं आभा सी उज्यारी लगै,
 प्यारी राधिका को प्रतिबिम्ब सो लगत चन्द ॥१४॥

रूप के मंदिर तो मुख में मनि-
 दीपक-से दृग है अनुकूले ।
 दर्पन में मनि, मीन सलील,
 सुधाकर नील-सरोज-से फूले ।
 'देवजू', सूर-मुखी मृदु कूल के,
 भीतर भौर मनो भ्रम भूले ।
 अङ्क मयंकज के दल-पंकज
 पंकज में मनो पंकज फूले ॥१५॥

पीत रंग सारी गोरे अंग मिलि गई 'देव',
 श्रीफल-उरोज-आभा आभासै अधिक-सी ।
 छूटी अलकनि छलकनि जल-बूंदनि की,
 बिना बेदी बंदन बदन-सोभा विकसी ।
 तजि-तजि कुंज-पुंज ऊपर मधुप-गुंज,
 गुंजरत मंजु रव बोलै बाल पिक-सी ।
 नीबी उकसाइ, नेकु नयन हँसाय, हँसि,
 ससि-मुखी सकुचि सरोवर तैं निकसी ॥१६॥

जोवन के रंगभरी इंगुर से अंगनि पै,
 एड़िन लौं आंगी छाजै छबिन की भीर की ।
 उचके उचौहैं कुच झपे झलकत झीनी,
 झिलमिली ओढ़नी किनारेदार चीर की ।
 गुलगुले गोरे गोल कोमल कपोल सुधा-
 बिन्दु बोल इन्द्रमुखी नासिका ज्यों कीर की ।

‘देव’ दुति लहराति छूटे छहरात केस,
बोरी जैसे केसरि किसोरी कसमीर की ।।१७।।

आई हों देखि बधू इक देव सु देखतै भूली सबै मति मेरी ।
राख्यो न रूप कछू विधि के घर लाई है लूटि लुनाई की ढेरी ।
ए री, अबैं वह ऐबैं है वैस मरेंगी हलाहल घूँटि घनेरी ।
जे जे गनी गुन आगरी नागरी है हैं ते वाकी चितौतही चेरी ।।१८।।

माखन सो मन दूध सो जोवन है दधि तै अधिकै उर ईठी ।
जा छवि आगे छपाकर छाँछ बिलोकि सुधा बसुधा सब सीठी ।
नैनन नेह चुवै कवि ‘देव’ बुझावति बैन वियोग अँगीठी ।
ऐसी रसीली अहीरी अहै, भला क्यों न लगै मनमोहनै मीठी ।।१९।।
कंज सो आनन खंजन सौ दृग या मनरंजन भूलैं न वोऊ ।
तामरसौ नलिनौ सरसौ अलि होइ नहीं तब सो चित सोऊ ।
पूरन इंदु मनोज सरो चित ते बिसरो उसरौ उन दोऊ ।
‘देव’ जू ओप किधौं अपमान अरे उपमा न करौ कवि कोऊ ।।२०।।

दूध सुधा मधु सिन्धु गँभीर ते हीर जु पै नगभीर लै आवै ।
बाल प्रवाल पला मिलिकै मनि मानिक मोतिन जोति जगावै ।
लै रजनीपति बीच विरामनि दामिनि दीप समीप दिखावै ।
जो निज न्यारी उज्यारी करै तब प्यारी के दाँतन की दुति पावै ।।२१।।

शृंगार (संयोग)

लागि प्रेम-डोरि खोरि साँकरी है कढ़ी आनि नेह सों निहोरि जोरि
आली मन मानती ।
उततें उताल ‘देव’ आये नँदलाल इत सौहैं भई बाल नवलाल
सुख सानती ।।
कान्ह कह्यौ टेरिकैं कहौ तें आई को हौ तुम लागतीं हमारे जान
कोई पहिचानती ।
प्यारी कह्यौ फेरि मुख हेरि जू चलेई जाहु, हमें तुम जानत, तुम्हें
हूँ हम जानती ।।२२।।

आजु मिले बहुतै दिन भावते भेंटत भेंट कछू मुख भाखौ ।
ये भुजभूषन मो भुज बांधि भुजा भरिकैं आधारस चाखौ ।।
लीजिये लाल उढ़ाय जरीपट कीजिये जू जिय जो अभिलाख्यौ ।
प्यारे हमें तुम्हें अन्तर पारत हार उतारि इतै धरि राखौ ।।२३।।

राजपौरिया के रूप राधे को बनाइ लाई गोपी मथुरा तें मधुबन की
लतानि में ।
हेरि कह्यौ कान्ह सों चलौ हो कंस चाहै तुम्हें काके कहे लूटत
सुने हौ दधि दानि में ।।